International Journal of Multidisciplinary Research and Development

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 10, 242-245
Oct 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 5.742

डॉ॰ किरण ग्रोवर
एसो॰ प्रो॰, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, अबोहर।

Correspondence
डॉ॰ किरण ग्रोवर
एसो॰ प्रो॰, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, अबोहर।

हिन्दी उपन्यासों में विवेचित सांस्कृतिक राष्ट्रवादी मूल्यों पर मंडराता खतरा

डॉ॰ किरण ग्रोवर

सारांशः—भारत की संस्कृति पर आर्थिक भूमंडलीकरण और परम्परा के प्रति बढ़ता मोह द्वन्द्वात्मक संघर्ष का रूप ले रहा है। दरअसल सांस्कृतिक घुसपैठ के दो लक्ष्य होते हैं एक तो है बाज़ार संस्कृति को फैलाकर उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देना तथा दूसरा सांस्कृतिक एकता को नष्ट करना। पाश्चात्य संस्कृति थोपने की साजिश सांस्कृतिक वर्चस्ववाद को जन्म दे रही है। इससे भारतीय संस्कृति के आर्थिक और सांस्कृतिक पक्ष को कुचला जा रहा है। भूमंडलीकरण ने देश प्रेम जैसी भावना के साथ भी खिलवाड़ किया है तथा भूमंडलीकरण की संस्कृति एकता के मूल पर अपना आतंक फैला रही है। सम्पूर्ण देशों में अलगाव की समस्या सांस्कृतिक संकट पैदा कर रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण देखकर साहित्यकार आतंकित हो उठते हैं जिसके विरोध में उपन्यासों में अपनी आवाज़ बुलन्द करके सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिरोध में मानवीय सम्बन्धों को प्रश्रय देते हैं तथा पारिवारिक सम्बन्धों की अहमियत को पुरानी पीढ़ी की आंखों से परखने का प्रयास भी करते हैं जिनमें कमलेश्वर, प्रियंवद, भगवान सिंह, अलका सरावगी, रवीन्द्र वर्मा, मंजूर एहतेशाम का योगदान अप्रतिम बन पड़ा ह जिन्होंने ने पुरानी पीढ़ी व नई पीढ़ी के अन्तर, समाज की अराजकता, मानवीय रिश्तों और मानवीयता की भावना पर कुठाराघात, मानव की अस्मिता और स्वत्व को छीनना, अपसंस्कृति का फैलाव, राजनीतिज्ञों के देश प्रेम पर व्यंग्य करके सांस्कृतिक मूल्यों पर मंडराते खतरे से पाठकों को सजग करने का प्रयास किया है, जोकि इस पत्र का निहितार्थ है।

कूट शब्दः भूमंडलीकरण, सांस्कृतिक घुसपैठ, राष्ट्रीय संस्कृति, उपभोक्तावाद, साहित्यकार।

प्रस्तावना

मूल्य मानवीयता का केन्द्र बिन्दु होते हैं। मूल्यों से हर समाज की नींव मजबूत बनती है। भारत की संस्कृति मूल्यों पर ही अधिष्ठित है। भारत की राष्ट्रीय संस्कृति जिन मूल्यों पर विकसित हुई है, आज उन मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है। इस कारण मानवता पर केन्द्रित सांस्कृतिक मूल्य संकट की स्थिति में हैं। एक ओर सामाजिक जीवन के धर्म निरपेक्ष सम्बन्धों की बुनियाद पर धर्म का कट्टरपंथी रूप धार्मिक सौहार्द को मिटा रहा है तो दूसरी ओर भाइचारे पर केन्द्रित पारिवारिक सम्बन्धों में उपभोक्तावादी मूल्यों का अतिक्रमण हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप मानव परम्परागत मानव मूल्यों को परित्यक्त कर विलासपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर हो रहा है। मानव सम्बन्धों की महत्ता गौण होकर पाश्विक मनोवृत्तिविकसित हो रही है। आम जनता भूमंडलीकरण का शिकार बनती जा रही है। दूरदर्शन ने संस्कृति के संकट को संस्कृति का वरदान बताकर जनता को मंत्रमुग्ध किया है तथा परम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति वैर भाव का विष बोया है। एक ओर भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का जाल मजबूत होता जा रहा हैं, दूसरी ओर आतंकवादी, विघटनकारी, साम्प्रदायिक व नस्लवादी शक्तियाँ लगातार भारतीय समाज को तोड़ रही हैं।

मानव सम्बन्धों को ग्रहण कर संस्कृति की रचना होती है, उन सम्बन्धों में जब हिंसा निहित होती है, तब संस्कृति विकृति में परिणित होती है तभी संस्कृति के लिए संकट उपस्थित होता है। आज धर्म के नाम पर भी समाज में कोलाहल हो रहा है। उपभोक्तावाद की चपेट में आने से सांस्कृतिक संकट के बादल सघन होकर मंडराने लगे हैं। योजनाओं और परियोजनाओं द्वारा संस्कृति को मनचाहा मोड़ देकर सांस्कृतिक प्रदूषण फैलाया जा रहा है। आज हमारी अस्मिता को संकट देने वाली राष्ट्रीयता हमें खतरे में डाल रही है। राष्ट्रीय संकट में वृद्धि होने से समाज की मर्यादाएँ टूट रही हैं।[1]

संस्कृति एक गतिशील प्रक्रिया है। मानव जीवन में संस्कृति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। मानव को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ और उच्चता प्रदान करने में सहायक सिद्ध करने वाली प्रक्रिया हैः संस्कृति। रामधारी सिंह जी ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि 'संस्कृति जीवन जी ने कर एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।'[2]वास्तव में संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है संशोधन करना, सुधारना, उतम बनना, परिष्कृत करना। मानव जीवन की गतिविधियों का संचालन करने से मनुष्य बनने की दिशा में जो अन्तःवृतियाँ अग्रसर होती है, उसे संस्कृति कहते हैं। संस्कृति मनुष्य की भाषा, उसकी वेशभूषा, उसका भोजन, उसकी भावनाएँ तथा मूल्य निर्धारित करती है। इतिहासकारों ने संस्कृति को किसी समूह या देश के विशेष कलात्मक अथवा

बौद्धिक विकास के रूप में ग्रहण किया है।[3]

स्वभावतः संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है। संस्कृति स्वत्व का पर्याय भी है। संस्कृति समाज के युग के ढांचे को अभिव्यक्त करती है। संस्कृति में जीवन और व्यवहार की सच्चाई का ज्ञान, अभाव की चेतना और आदर्श की कल्पना, तर्क वितर्क व विश्वास इन सभी पक्षों की अवस्थिति निहित होती है। संस्कृति मनुष्य की स्थिति की द्योतक ही नहीं अपितु उसकी प्रेरणा व दिशा की नियामक है। संस्कृति से व्यष्टि और समष्टि की अस्मिता की पहचान होती है।[4] संस्कृति के द्वारा ही वास्तव में मानव का शुद्धिकरण संभव है क्योंकि संस्कृति उच्चादर्शों के समूह का नाम है एवम् किसी भी देश या समाज के कलात्मक, बौद्धिक व मानसिक विकास की द्योतक है।

संस्कृति और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य संस्कृति का लेखा जोखा है। संस्कृति का जो भाव साहित्य में अन्तर्निहित है, उसमें काल विशेष को उजागर करके संस्कृति सापेक्षता का महत्त्वपूर्ण हिस्सा पाठकों के समक्ष रखने में साहित्यकार सफल हुए हैं। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, इन विधाओं में उपन्यास अपने आप में महत्वपूर्ण है।प्रारम्भ से लेकर समाज का अत्यन्त विस्तृत रूप उपन्यास में देखा जा सकता है। समाज में घटित हुई घटनाओं का अत्यन्त सजग बोध उपन्यास में ही मिलता है। यह सजग बोध और बोध वृत्तिसे मनुष्य की बौद्धिकता या चेतना व्यापक हो जाती है।[5] उपन्यास जीवन का वैज्ञानिक व दार्शनिक अध्ययन है।जीवन का प्रवाह इतिहास के रूप में निरन्तर गतिशील रहता है। जीवन की धारावाहिकता के साथ घटनाओं का संचयन किया जाता है। उपन्यासों में भारतीय समाज के जीवन के विविध भाव स्तर विवेचित हुए हैं। जीवन की उलझी हुई परिस्थितियां उपन्यास को विरासत में प्राप्त हुई हैं। मानव जीवन के अत्यधिक निकट होने के कारण साहित्य में अपनी अलग पहचान रखता है। प्रत्येक व्यक्ति के मानस में सामाजिक जीवन ऐतिहासिक बोध के रूप में समाहित होता है।[6]साहित्यकार अपने अनुभवों व दूसरों के अनुभवों को घटना प्रधान मानकर विशेषकर सामाजिक घटना मानकर अपनी रचना में रुपान्तरित करे तो वह साहित्य अपने आप में श्रेयस्कर माना जाता है। रमेश देव ने लिखा है कि 'साहित्यकार को समाज से मनुष्य मिलते हैं, वस्तुएं मिलती हैं, विषय मिलते हैं, घटनाएं और पात्र मिलते हैं, तरह तरह के विश्वास, अविश्वास, अन्धविश्वास मिलते हैं, लोकाचार, लोक प्रसंग और सांस्कृतिक आधार मिलते हैं, ये सब जब समाज में हैं, सहज, सामान्य और जीवनगत जरूरतें बनकर भी जुड़े हैं लेकिन ये सब जब सर्जक के पास आते हैं तो मनुष्य चरित्र या पात्र में बदल जाते हैं, घटनाएँ और स्थितियाँ परिवेश बन जाती हैं।'[7]

भारत की संस्कृति पर भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद का हस्तक्षेप बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण अपने साथ भोगवादी पश्चिमी संस्कृति को खाद दे रहा है। लोग न तो परम्परिक संस्कृति को छोड़ पा रहे है और न पश्चिमी संस्कृति से अपने को अप्रभावित रख पा रहे हैं। आर्थिक भूमंडलीकरण और परम्परा के प्रति बढ़ता मोह द्वन्द्वात्मक संघर्ष का रूप ले रहा है।[8]धर्म के नाम पर भी समाज में झगड़े होने लगे, जिससे सामाजिकों का विवेक अस्थिर होने लगा।इस अस्थिरता ने अराजकता को बढ़ावा दिया और अराजकता ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। दरअसल सांस्कृतिक घुसपैठ के दो लक्ष्य होते हैं एक तो है बाज़ार संस्कृति को फैलाकर उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देना तथा दूसरा है कि सांस्कृतिक एकता को नष्ट करके नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध जनता के एकजुट प्रतिरोध को तोड़ना।

बाज़ार सिर्फ़ खरीदने व बेचने की जगह न होकर संस्कृति, साम्राज्य, राष्ट्र बनाने की व्यवस्था भी है लेकिन बाज़ार मानव को उपभोक्ता में परिणित कर देता है। बाज़ार की आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था भी होती है। विज्ञापनों का लक्ष्य भी मानव ही है, इसलिए बाज़ार संस्कृति के अंग बनते जा रहे हैं। पीत पत्रकारिता के कारनामे आज साम्प्रदायिक शक्तियों के हाथ में खिलौना बन कर रह चुके हैं।[9] अख़बार चलाने वालों की अपनी राजनीति होती है, वे उसी के आधार पर सम्बन्धित समाचारों को बल देते हैं। आम जनता भूमंडलीकरण का शिकार बनती जा रही है। दूरदर्शन ने संस्कृति के संकट को संस्कृति का वरदान बताकर जनता को मंत्रमुग्ध किया है तथा परम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति वैर भाव का विष बोया है। उपभोक्तावाद की चपेट में आने से परम्परिक संस्कृति को बचाने का प्रयास नहीं किया गया जिससे सांस्कृतिक संकट के बादल और सघन होकर मंडराने लगे।

बाज़ारीकरण के कारण हमारी संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया है। सुरेश पंडित जी ने विस्तार से लिखा है कि 'लोग एक खास तरह के संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। उनका सपना छूटते जाने का दर्द और नये को अपनाने का आकर्षण एक अलग तरह का अहसास और अनुभूति को पैदा कर रहा है। इसी संक्रमण के संघर्ष को देखते हुए चिन्तकों ने अपसंस्कृति, मेडोना कल्चर नाम भी दिया है। वास्तव में उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक प्रदूषण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।[10] भूमंडलीकरण के तहत पाश्चात्य संस्कृति अन्य संस्कृतियों पर थोपी जा रही है। भूमंडलीकरण का उद्देश्य केवल आर्थिक निवेशीकरण ही नहीं था अपितु उनका अघोषित आशय यही था कि न केवल आर्थिक स्तर पर बल्कि सांस्कृतिकस्तर पर आपको भूमंडलीय संस्कृति अपनानी होगी। पाश्चात्य संस्कृति थोपने की साजिश सांस्कृतिक वर्चस्ववाद को जन्म दे रही है। इससे भारतीय संस्कृति के आर्थिक और सांस्कृतिक पक्ष को कुचला जा रहा है। बिना कोई घोषित नीति अपनाए सांस्कृतिक उपनिवेशवाद फैल रहा है।

भूमंडलीकरण ने देश प्रेम जैसी भावना के साथ भी खिलवाड़ किया है। इन्हीं विचारों पर प्रकाश डालते हुए प्रफुल्ल कोलख्यान ने व्यक्त किया है कि यह सत्तावन उपभोक्ता समूह बहुराष्ट्रीयता के सामने नतमस्तक होते हुए भी अंधराष्ट्रवाद को देश का पर्याय बना देने में अक्सर सफल हो जाता है। इस प्रकार का कुत्सित राष्ट्रवाद लोगों के आर्थिक शोषण के साथ साथ उनके देश प्रेम की निश्छल भावनाओं के शोषण का भी आधार रचता है।[11]भारत जैसे बहुसंस्कृति वाले देश का आधार राष्ट्रीयता की भावना है और यह भूमंडलीकरण की संस्कृति एकता के मूल पर अपना आतंक फैला रही है।

आज के मनुष्य को संस्कृति विमुक्त करने के पीछे साम्प्रदायिकता और भूमंडलीकरण की अहम् भूमिका है। मीडिया जोकि पहले सामाजिक प्रतिबद्धता को अपना ध्येय मानता था, अब इन आदर्शों से विमुख होता जा रहा है। मीडिया पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों के स्वार्थ सिद्ध करने का माध्यम बन रहा है। सांस्कृतिक उत्पीड़न व निषेध की संस्कृति ये दोंनो तत्व मनुष्य की कल्पनाशीलता व सर्जनात्मकता का हरण कर लेते हैं। इससे मनुष्य होने का बोध ही समाप्त हो जाता है। रामशरण जोशी जी ने भूमंडलीकरण की संस्कृति से उत्पन्न सांस्कृतिक उत्पीड़न को मानवीयता के लिए खतरा बताया है।[12] राजाराम भादू जी ने सांस्कृतिक वर्चस्ववाद को जटिल व चुनौतीपूर्ण बताया है।[13]

आम जनता मीडिया और बाज़ारवाद की चकाचौंध में खिंचती चली आ रही हैं। विज्ञापनों, फिल्मों और टी वी चैनलों के जरिये पाश्चात्य संस्कृति लोगों पर लादी जा रही है। वास्तव मेंपाश्चात्य संस्कृतिउपभोक्तावाद को प्रश्रय दे रही है जिसके कारण आम आदमी की मानसिकता में बदलाव रेखांकित हो रहा है। एक स्तर पर सांस्कृतिक उत्पाद तैयार कर उनका बृहद् पैमाने पर विपणन चल रहा है तो दूसरे स्तर पर सांस्कृतिक उत्पाद अन्य उपभोक्ता उत्पादों के लिए मांग पैदा करते हैं। इसके लिए वे अपने उपभोक्ताओं की जीवन शैली और मानसिकता में परिवर्तन लाने का काम कर रहे हैं। मीडिया के दहाड़ते आतंक और सत्ता प्रतिष्ठानों की शाह, बुद्धिजीवियों की चुप्पी और पुनरुत्थानवादी ताकतों के आश्चर्यजनक ताण्डव के बीच जिस प्रतिरोध की संस्कृति की आवश्यकता है, उससे साहित्य के सामाजिक सरोकारों की दिशा निर्धारित होगी।[14]

पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक मूल्यों में जो बदलाव आया है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रतिबिम्बित

हो रहा है। इसके मूल में एक ओर भूमंडलीकरण का उपभोग है तथा धर्मान्धता का राष्ट्रवाद है। देश की एकता एवम् मानवीय सम्बन्धों को सुदृढ़ करने वाले मूल्य नये परिवेश में बिखरते जा रहे हैं। इस तरह मूल्यहीनता का दौर प्रारम्भ हो रहा है जिससे अराजकता का स्थिति उत्पन्न हो गई है। प्रेम, मित्रता, भाईचारा, देश प्रेम जैसे मूल्य भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं इसके बावजूद भी देश के भीतर व बाहर हिंसा को प्रश्रय मिल रहा है। देशों के बीच आपसी युद्धों के परिणामरूवरूप हिरोशिमा पर भारी विस्फोट हुआ। कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में हिरोशिमा स्वयं एक पात्र बनकर उभरता है। हिरोशिमा के शब्दों में –'आइन्स्टाइन को भी माफ़ नहीं किया जा सकता। राबर्ट ओपनहाइमर, फर्मी, हंसबेथे, एडवर्ड टेलर और इनके साथ के सभी वैज्ञानिक चाहे वे फ्रांस के हों, ब्रिटेन या रूस के –वे मानव द्रोही और जघन्य अपराधी हैं।'[15] इस कथन से स्पष्ट होता है कि एक ओर देश के बाहर हिंसा का वातावरण है तो दूसरी ओर धार्मिक कट्टरपंथियों ने हिंसा को उकसाया है।

हिंसा के इसी ताण्डव को देखते हुए अलका सरावगी के 'कलि कथा वाया बायपास' का अमोलक पूछता है कि 'क्या सचमुच दुनिया में मानवता नाम की चीज़ खत्म हो जायेगी।[16] सांस्कृतिक मूल्यों के भीतर मानवता की भावना निहित होती है लेकिन आज वैश्विक युद्धों और आन्तरिक कलहों के कारण मानवता पर प्रश्न चिह्न लग गया है।

आज देश प्रेम जैसी भावना भी साम्प्रदायिकता और भूमण्डलीकरण का शिकार हुई है। देश प्रेम के उच्च प्रतीक महात्मा गांधी आज सिर्फ नोटों में छपा हुए एक पहचान मात्र बनकर रह गये हैं। रवीन्द्र वर्मा जी ने 'निन्यानवें' उपन्यास के अन्तर्गत पुरानी पीढ़ी के हरि व नई पीढ़ी के हरि के बीच अन्तर स्पष्ट किया है। पुरानी पीढ़ी का हरि देश के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है तो वहीं पर आज का हरि राजनीति को पैसे कमाने का माध्यम मात्र मानता है।रामदयाल के कथनों में –'मैं जानता हूं कि पहले हरि देश की आज़ादी ढूँढते हुए खो रहा है। अपनी आज़ादी आज़ादी नहीं होती। अपनी उठाईगीरी होती है।'[17]

देश प्रेम के नाम पर राजनीतिज्ञ सिर्फ स्वार्थ साधने के रास्ते ढूँढते हैं। देश प्रेम का वास्ता देकर व्यापारी वर्ग भी फायदा उठाते है। आज देश प्रेम को बहुराष्टीय कम्पनियों ने उपभोग की वस्तु बना दिया है। भगवान सिंह जी ने 'उन्माद' उपन्यास में राजनीतिज्ञों के देश प्रेम पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि 'भारतीय राजनीति को समझने के लिए ज्ञान नहीं कमीनेपन की जरूरत होती है।'[18]

अलका सरावगी ने 'कलि कथा वाया बायपास' के अन्तर्गत सच्चे देश प्रेमी के रूप में पागल फकीर को दिखाया है जो तिरंगे झण्डे को हमेशा अपने सीने से लगाये रखता है।आज के दौर में देशप्रेम की भावना विलीन होती जा रही है। अलका सरावगी जी ने लिखा है कि 'राष्ट्रीय ध्वज, चक्र तथा वन्देमातरम् ने अख़बारों और दूरदर्शनों के विज्ञापनों में बिककर स्वतन्त्रता को करोड़ों रुपये का कारोबार बना दिया, मोजों, टी शर्टों से लेकर गाड़ी बनाने वाली कम्पनी तक ने आज़ादी का पचासवीं वर्षगांठ के झण्डे के तीन उड़ते रंगों के बीच पचास लिये हुए नमूने को हर जगह छाप दिया हैं यहां तक की सारी मल्टीनैशनल कम्पनियां भारत की आज़ादी की वर्षगांठ को इस तरह मानते हुए तुली हुई है मानो यह उनकी आज़ादी का ही जश्न हो।'[19] इस उपन्यास में एक ओर अमोलक के चरित्र को उभार कर देश भक्ति की मिसाल पेश की गई है तथा दूसरी ओर देश प्रेम जैसे मूल्यों के बदलने की बात उठी है।

आज देश प्रेम नव हिन्दुत्व की नव्य व्याख्या में उलझ रहा है। नव हिन्दुत्व के नाम पर पिरोया जाने वाला देश प्रेम सिर्फ कट्टर हिन्दू धर्म को बढ़ावा दे रहा है। गवान सिंह जी के 'उन्माद' उपन्यास का रत्न हिन्दू कट्टरवादियों के गिरोह में फंस जाता है। रत्न को कट्टर सोच से बाहर निकालने की कोशिश करते हुए प्रोफैसर वर्मा उसे समझाते हैं कि 'यदि तुम्हें हिन्दू समाज से प्रेम होता तो सबसे पहले इस चिन्ता से कातर होते कि कम से कम इस समाज में कोई दीन हीन, कातर, अशिक्षित, रोग से घिसटता हुआ और दवा से वंचित व्यक्ति न रहे।'[20]नव हिन्दुत्व से प्रेम करने की अनिवार्य शर्त यह होती है कि कट्टरवादी सोच से बाहर निकला जाये। नव हिन्दुत्व का एजेण्डा विचार शून्य सामाजिक मूल्यों को ही बढ़ावा देता है।

मानव के बीच प्रेम, मित्रता, भाईचारा, समन्वयशीलता, शान्ति, अहिंसा, मानवीयता, उदारता, सहिष्णुता जैसे सांस्कृतिक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। मानव संकीर्णता, घृणा, अहंकार, जाति, नस्ल, धर्म ,वर्ग व वर्ण के आधार पर बँट कर विनाश के कगार पर खड़ा है। मानव मूल्यों के ह्रास होने पर ही भारत पाकिस्तान का विभाजन हुआ। यह विभाजन राजनीतिक व भौगोलिक नहीं था बल्कि इसने दो दो संस्कृतियों में बँटवारा की स्थिति पैदा कर दी। विभाजन से पहले व विभाजन के बाद भी हिन्दू मुस्लिम दंगे होते रहे, उसमें लूटमार, बलात्कार व हत्याएं लगाातार होती रही। ये सब घटनाएं मानवीय मूल्यों के ह्रास का कारण बनी। कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में मानव मूल्यों के ह्रास की गाथा का प्रारूप इस प्रकार है–'पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीड़न, यातना, बेईमानी, बदकारी का सैलाब उमड़ रहा है, जो सुनाई पड़ता है, जो घटित हो रहा है, पर घटित होता दिखाई नहीं दे रहा है–––यही हमारे समय की त्रासदी है क्योंकि हम मूल्यबोध के बावजूद मूल्यहीनता की चपेट में हैं।'[21]

सम्पूर्ण देशों में अलगाव की समस्या सांस्कृतिक संकट पैदा कर रही है। यह सिर्फ़ भारत की नहीं अपितु विश्व की समस्या है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 1947 में भारत व पाकिस्तान का अलगाव है जिसका यथार्थ वर्णन कमलेश्वर जी ने विवेच्य उपन्यास में किया है–'अब ऐसे पागल लोग इस दुनिया में नहीं मिलते हैं––– अगर मिले होता तो सोवियत यूनियन नहीं टूटता, यूगोस्लाविया में बोस्निया के मुसलमानों का कत्लेआम न होता, सोमालिया में बच्चे तड़प तड़प कर अकाल से न मरते। चार सौ फ़िलिस्तीनी इज़राइल की सरहद पर भूख व ठंड में पड़े मौत का इन्तज़ाम न करते और इज़राइली उन्हें मौत के मुँह में न खदेड़ते।'[22]

मंजूर एहतेशाम के 'सूखा बरगद' उपन्यास की रशीदा धर्म से अधिक संस्कृति को महत्व देती है। यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि एक मुल्क दो टुकड़ों, मज़हब के नाम पर बांट दिया गया। सच्चाई है कि संस्कार को कैसे नकारा जा सकता है। यू पी का मुसलमान अपने संस्कारों में यू पी के हिन्दू के अधिक निकट होगा या के पंजाब के मुसलमान के।'[23] राष्ट्रीय अस्तित्व का आधार धर्म नहीं होता अपितु संस्कृति को माना जाता है। जहाँ जहाँ धर्म को संस्कृति के दायरे में लाया जाता है वहाँ वहाँ संस्कृति सकुंचित हो जाती है।

भारतीय संस्कृति नष्ट होती जा रही है। यह चिन्ता अमेरिका व जापान को भी सताने लगी हैं। अनुदान व संस्थाओं द्वारा, योजनाओं और परियोजनाओं द्वारा उन्होंने संस्कृति को मनचाहा मोड़ देकर सांस्कृतिक प्रदूषण पैदा किया है। नशे की संस्कृति, कैबरे की संस्कृति, हिप्पी संस्कृति जैसी बीमारियां इसी प्रदूषण का परिणाम हैं। यह सौगात हमें उनसे मिली हैं, जिनकी कोई संस्कृति भी नहीं है। बड़ी सभ्यताओं को निस्तेज करने का सबसे आसान तरीका है उसे अपनी संस्कृति से उखाड़ना। लूशुन के जरिए वर्तमान चीन में भूमंडलीकरण के उपरान्त की सांस्कृतिक तस्वीर खींचते हुए कमलेश्वर जी ने विवेच्य उपन्यास में लिखा है कि हमारी जाति को अकर्मण्य बना कर वे परछाइयां इन लुटेरों ने छीन ली हैं–हमें इन्होंने संस्कृति विहीन करना चाहा है। संस्कृति ही पूर्वजों की जीवित परछाइयों का संसार है।'[24] इस वाक्य से विदित होता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हमारे हकों को छीन लिया है। सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अपसंस्कृति को फैलाने वाले दुनिया को सभ्य बनाने का ढोंग रचते हैं। वास्तव में यह अपसंस्कृति हमसे अस्मिता और स्वत्व को छीन लेती है।

जब धर्म सामूहिक बनकर साम्प्रदायिक का रूप ग्रहण करता है तब मनुष्य अंधा हो जाता है और प्रेम निरर्थक हो जाता है। समाज की

अराजकता ने मूल्यच्युति को रास्ता दिया है। प्रेम जैसी भावना को हत्या, बलात्कार और पागलपन में बदलना मूल्यहीन समाज की वृति है। रवीन्द्र वर्मा जी के उपन्यास 'दस बरस का भंवर' के अन्तर्गत राम कुमार का सलमा के साथ संभोग करना मूल्यहीन समाज की मानसिकता को दर्शाता है। अब वह ज़माना नहीं था कि लड़के –लड़कियां मोहल्लों में छतों से नज़रों के तीर चलाएं और मन्दिरों में एक दूसरे से टकरा जाएं। तब शहर में प्रेमी व प्रमिका के बीच चुम्बन एक पराक्रम था। अब प्रेमी ने प्रेमिका का बलात्कार किया।'[25] एक ओर संस्कृति पर धर्म का आक्रमण है तो दूसरी ओर उपभोक्तावादी संस्कृति का। भूमण्डलीकरण से उपजी इस व्यापारी संस्कृति का मानदण्ड सिर्फ पैसा है। प्रियंवद जी के 'वे वहां कैद हैं' उपन्यास के अन्तर्गत दादू कहते हैं–'जानती हो पैसा एक खास तरह की संवेदनहीनता को जन्म देता हैजो देखने में उचित और तर्कपूर्ण लगती है।आदमी धीरे धीरे स्वयं में इतर और दूसरे सारे मानवीय संवेदनों से असम्पृक्त हो जाता है, दूसरे मनुष्यों का अस्तित्व उसके लिए सिर्फ उपयोगी और अनुपयोगी रह जाता है। यह संवेदनहीनता ही पैसे की पहली सीढ़ी है।'[26]

पैसे कमाने के चक्कर में मनुष्य मानवीय रिश्तों और मानवीयता की भावना से छूटते जाते हैं। रवीन्द्र वर्मा के 'निन्यानवें' का हरि करोड़पति बनना चाहता है। करोड़पति बनने की हैसियत से धारीदार जांघिया पहनने वाले पिता से दूर रहना चाहता है। हरि के पिता रामदयाल सोचते हैं कि'क्या करोड़पति होने के लिए दुनिया को चरागाह बना देना जरूरी है।'[27] पैसे के लिए हरि परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को ठुकराता है।

उपन्यासकारों ने मानवीय मूल्यों को स्वीकारते हुए हिन्दू संस्कृति और उपभोक्तावादी संस्कृति को राष्ट्र के लिए अहितकर साबित किया है। धार्मिक कट्टरपंथिता के कारण भारत की एकता में दरार पड़ रही है। पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के हनन से सांस्कृतिक मूल्यों की च्युति हो रही है। संस्कृति मनुष्य के व्यक्तित्व और बाह्य पक्ष पर मानवीय चेतना से जुड़ी रहती है।अपसंस्कृति भारत की देशीय संस्कृति के अस्तित्व को खतरे में डालते हुए जीवन को खोखला बना रही है। यह सांस्कृतिक वैमनस्य उत्पन्न कर भारतीय संस्कृति के लिए घातक सिद्ध हो रही है। साहित्य नवचेतना,सतत कार्यशीलता तथा विकास के लिए पाठकों को अपने विचारों से पथ प्रदर्शित करता है। साहित्यकार समाज की व्यवस्था और व्यवहार से विषय का चुनाव करता है। वे समाज को अपने सृजन में समेटते हुए भविष्य का द्रष्टा बनकर सामने आता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण देखकर साहित्यकार आतंकित हो उठते हैं जिसके विरोध में उपन्यासों में अपनी आवाज़ बुलन्द की है। धर्मनिरपेक्ष संस्कृति को सशक्त ढंग से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। उपन्यासकारों यथा कमलेश्वर, प्रियंवद, भगवान सिंह, अलका सरावगी, रवीन्द्र वर्मा,मंजूर एहतेशाम ने पुरानी पीढ़ी व नई पीढ़ी के अन्तर, समाज की अराजकता, मानवीय रिश्तों और मानवीयता की भावना पर कुठाराघात, मानव की अस्मिता और स्वत्व को छीनना, अपसंस्कृति का फैलाव, राजनीतिज्ञों के देश प्रेम पर व्यंग्य करके सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिरोध में मानवीय सम्बन्धों को प्रश्रय देकर सामाजिक एकता की मांग की है तो दूसरी ओर पारिवारिक सम्बन्धों की अहमियत को परखते हुए भारत के सांस्कृतिक मूल्यों पर मंडराते खतरे को महसूस करते करके पाठक वर्ग के विचारों को बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है। इस पत्र के सृजन की धर्मिता भी इन्हीं कोशिशों में संलिप्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. राजेश्वर सक्सेना, इतिहास विचारधारा और साहित्य, पृ॰ 20।
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰ 673।
3. दिनेश मणि संस्कृति और सांस्कृतिक विविधता, मधुमति नवम्बर 2007, पृ॰ 44।
4. देवी शंकर अवस्थी, आलोचना और आलोचना, पृ॰ 64।
5. वीरेन्द्र मोहन, इतिहास और संस्कृति पृ॰ 17।
6. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ॰ 44।
7. रमेश देव, समाज और साहित्य सम्बन्धों के राग विराग, चिन्तन सृजन, वर्ष 3, अंक 4, पृ॰ 34।
8. गणेश मंत्री, गांधी और अम्बेदक पृ॰, 16।
9. सरोज बजाज, इक्कीसवीं सदी की ओर, पृ॰196।
10. प्रभा खेतान, कल के लिए, अप्रैल–सितम्बर, 2004, पृ॰ 71।
11. प्रफुल्ल कोलख्यान, साहित्य, समाज और जनतंत्र, पृ॰ 7–8।
12. रामशरण जोशी, कल के लिए, अप्रैल–सितम्बर, 2004, पृ॰6।
13. राजाराम भादू, मधुमती, फरवरी 2006, पृ॰ 68।
14. निरंजन सहाय, मधुमती, फरवरी 2003, पृ॰ 87।
15. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान,राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2007, पृ॰167।
16. अलका सरावगी, कलि कथा :वाया बाइपास, पृ॰ 147।
17. रवीन्द्र वर्मा, निन्यानवें, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ॰ 202।
18. भगवान सिंह, उन्माद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ॰ 44।
19. अलका सरावगी, कलि कथा :वाया बाइपास,आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2007, पृ॰ 138।
20. भगवान सिंह, उन्माद, पृ॰209।
21. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ॰ 201।
22. वही,पृ॰ 107।
23. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ॰ 93।
24. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ॰ 283।
25. रवीन्द्र वर्मा, दस बरस का भंवर,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ॰ 162।
26. प्रियंवद, वे वहां कैद हैं,नेशनल पब्लिंशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994 पृ॰ 50–51
27. रवीन्द्र वर्मा, निन्यानवें, पृ॰ 178।

Net Sources

1. en.wikipedia.org/wiki/Culture
2. www.hindisamay.com/writer/*प्रफुल्ल-कोलख्यान*.cspx?id.
3. pratilipi.in/rajaram-bhadu
4. https://en.wikipedia.org/.../Ram_Sharan
5. kitne-pakistan-by-kamleshwar.htmsahitya-akademi.gov.in › Home › Literaray Activities
6. *https://in.linkedin.com/pub/bhagwan-singh/28/a7/7b6*
7. *en.wikipedia.org/wiki/Manzoor_Ahtesham*
8. *https://openlibrary.org/.../_Priyam..*
9. *https://hi.wikipedia.org/wiki/अलका_सरावगी*
10. *www.jnanpith.net/author/priyamvad.*
11. *www.kalpana.it/eng/writer/indian_writers/alka_saraogi.htm*
12. https://in.linkedin.com/in/ravindervarma
13. *indiatoday.intoday.in/...**alka-saraogi**...*